समक्ष: डी. एस. तेवतिया न्यायमूर्ति

मेसर्स फ्रिक इंडिया लिमिटेड, जीवन विहार, संसद मार्ग, नई दिल्ली।

बनाम

कार्यकारी अभियंता और एक अन्य, - उत्तरदाता।

1972 का एफएओ 262

16 जुलाई, 1974

*मध्यस्थता अधिनियम (*1940 का X) - धारा 14 *और* 38 - *मध्यस्थ द्वारा दिया गया निर्णय, मध्यस्थता के लिए एक* पक्ष के कब्जे में - ऐसा पक्ष - क्या निर्णय को अदालत में दायर किए बिना न्यायालय का नियम बनाने के लिए सक्षम है - मध्यस्थ से पंजीकृत डाक द्वारा निर्णय की प्राप्ति - क्या अधिनियम की धारा *14 (1)* के *तहत नोटिस दिया* गया है।

यह अभिनिर्धारित किया *जाता* है कि मध्यस्थता अधिनियम, 1940 की धारा 14 (2) में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि भले ही मध्यस्थ द्वारा मध्यस्थता के पक्षकारों को पुरस्कार या उसकी हस्ताक्षरित प्रति दी जाती है, वे ऐसा करने के लिए मध्यस्थ के पूर्व अधिकार के बिना इसे अदालत में दायर नहीं कर सकते हैं। यह नहीं माना जा सकता है कि केवल निर्णय सौंपने मात्र से मध्यस्थ को अपनी ओर से न्यायालय में इसे दायर करने का अधिकार आवश्यक हो जाता है। मध्यस्थ के इस तरह के अधिकार को विशेष रूप से साबित किया जाना चाहिए। पक्षकारों द्वारा अपने दम पर मध्यस्थता के लिए एक पुरस्कार दाखिल करने से स्पष्ट रूप से इनकार किया जाता है। यह निर्णय कानूनी रूप से केवल मध्यस्थ द्वारा स्वत*:* या मध्यस्थता के किसी भी पक्ष के माध्यम से अपने पूर्व प्राधिकार के साथ या न्यायालय के समन के जवाब में दायर किया जा सकता है, जब मध्यस्थता के किसी भी पक्ष द्वारा ऐसा करने के लिए कहा जाता है, जहां वह अदालत में इसे दायर करने के लिए अनिच्छुक होता है। अधिनियम की धारा 38 को हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है, इसका अर्थ यह है कि यदि मध्यस्थता के किसी भी पक्ष को इस धारा के प्रावधानों के आधार पर या तो मध्यस्थ से या न्यायालय के साधन के माध्यम से निर्णय प्राप्त होता है, तो वह मध्यस्थ के अधिकार के बिना अदालत में इसे दायर करने का अधिकार प्राप्त करता है और फिर सीधे अदालत के निर्णय और डिक्री की मांग करता है। इसकी शर्तें। इसलिए पहले अदालत में कानूनी रूप से दायर किए बिना, मध्यस्थता के किसी भी पक्ष

(5) एआईआर, 1944 लाहौर 398।

के लिए यह सक्षम नहीं है कि वह इसे अदालत का नियम बनाने की मांग करे और उसके संदर्भ में निर्णय और डिक्री प्राप्त करे।

यह अभिनिर्धारित किया *जाता* है कि पंजीकृत डाक के माध्यम से मध्यस्थ से मध्यस्थता के लिए एक पक्ष द्वारा निर्णय की एक प्रति प्राप्त करना अधिनियम की धारा 14 (1) के प्रावधानों के अर्थ के भीतर एक उचित नोटिस है।

चंडीगढ़ के उप-न्यायाधीश प्रथम श्रेणी श्री हरनाम सिंह के 21 मार्च, 1972 के आदेश से प्रथम अपील की गई, जिसमें जुर्माने के साथ आवेदन *को खारिज कर दिया गया था।*

अपीलकर्ता की ओर से अधिवक्ता डीएन अवस्थी।

श्री आई. एस. बलहारा, एडवोकेट, उत्तरदाताओं *के साथ एडवोकेट, आनंद सरूप।*

निर्णय

तेवतिया, जे.-एफएओ संख्या 262 और 1972 का सिविल संशोधन संख्या 1105, दोनों मेसर्स फ्रिक इंडिया, लिमिटेड, जीवन विहार, 3-पार्लियामेंट स्ट्रीट, नई दिल्ली द्वारा भारतीय मध्यस्थता अधिनियम, 1940 (इसके बाद अधिनियम के रूप में संदर्भित) की धारा 14 और धारा 17 के तहत दायर एक आवेदन से उत्पन्न होते हैं।

1970, न्यायालय का नियम और उसके संदर्भ में निर्णय और डिक्री की मांग करना।

2. उत्तरदाता को कार्यकारी अभियंता के रूप में वर्णित किया गया; परियोजना जन स्वास्थ्य प्रभाग संख्या 4, चंडीगढ़ (सरकार) ने उपर्युक्त आवेदन का अन्य बातों के साथ-साथ दो आधारों पर विरोध किया (i) कि उक्त आवेदन को सीमा द्वारा प्रतिबंधित किया गया था; और (ii) यह कि यह प्रतिवादी के खिलाफ सुनवाई योग्य नहीं था।

3. ट्रायल कोर्ट ने निम्नलिखित दो मुद्दे तैयार किए जो उसने आवेदक (अब इस न्यायालय में याचिकाकर्ता) के खिलाफ तय किए: –

   i. क्या भारतीय मध्यस्थता अधिनियम की धारा 14/17 के तहत आवेदन समय के भीतर है?

---

(5) एआईआर, 1944 लाहौर 398।

ii. क्या प्रतिवादी के कार्यालय के खिलाफ आवेदन सुनवाई योग्य है?

4. मुख्य रूप से यह प्रश्न कि क्या न्यायालय में कानूनी रूप से निर्णय दायर किए बिना मध्यस्थता के किसी भी पक्ष के लिए यह सक्षम है कि वह न्यायालय का नियम बनाए और उसके संदर्भ में निर्णय और डिक्री प्राप्त करे?

5. ऊपर दिए गए प्रश्न की सराहना करने के लिए कुछ प्रासंगिक तथ्यों पर ध्यान दिया जाना चाहिए।

6. मध्यस्थ ने 29 जुलाई, 1970 को इस अधिनिर्णय की घोषणा की थी और उस पर हस्ताक्षर किए थे। उन्होंने अगले दिन अर्थात 30 जुलाई, 1970 को पंजीकृत डाक द्वारा पक्षकारों को इसकी एक प्रति अग्रेषित की। आवेदक मैसर्स फ्रिक इंडिया लिमिटेड ने 1 अक्तूबर, 1971 को प्रश्न में आवेदन प्रस्तुत किया, अर्थात उस तारीख से लगभग एक वर्ष और दो महीने के बाद, जिस तारीख को अधिनिर्णय की प्रति मध्यस्थ द्वारा उसे अग्रेषित की गई थी। उक्त आवेदन दाखिल करने से पहले, आवेदक ने प्रतिवादी कार्यकारी अभियंता को पुरस्कार में परिकल्पित राशि का भुगतान करने से 3/4 अनुस्मारक भेजे थे। प्रतिवादी से कोई जवाब नहीं मिलने के बाद, आवेदक के वकील, श्री केआर कालिया ने मध्यस्थ को अदालत में निर्णय दायर करने के लिए लिखा, जिसने बदले में, उन्हें *12 अगस्त, 1971 के अपने पत्र के माध्यम से, प्रदर्शनी पृष्ठ 1; अदालत में आवेदन करने का निर्देश दिया और उसके बाद संबंधित आवेदन को ऊपर दी गई तारीख पर चंडीगढ़ में अदालत में प्रस्तुत किया गया।*

7. ऐसा प्रतीत होता है कि, आवेदन पर प्रतिवादी के जवाब के बाद देरी को माफ करने के लिए परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के तहत भी एक आवेदन दायर किया गया।

8. मेसर्स फ्रिक इंडिया लिमिटेड के विद्वान वकील ने प्रार्थना की है कि 1972 के एफएओ नंबर 262 को भी सिविल संशोधन के रूप में माना जाए क्योंकि इस न्यायालय में चुनौती

---

(5) एआईआर, 1944 लाहौर 398।

के तहत आदेश से कोई एफएओ सक्षम नहीं है। प्रतिवादी के विद्वान वकील द्वारा इस पर आपत्ति नहीं की गई है। इस आशय के अधिकारियों की एक श्रृंखला होने के कारण कि एक अपील को एक संशोधन के रूप में माना जा सकता है, मैं आदेश देता हूं कि 1972 के एफएओ संख्या 262 को सिविल पुनरीक्षण याचिका के रूप में माना जाए।

किसी भी पक्ष की ओर से दिए गए तर्क से निपटने से पहले, मध्यस्थता अधिनियम और परिसीमा अधिनियम के प्रासंगिक प्रावधानों पर ध्यान दिया जाना चाहिए, जो फैसले में शामिल हैं। मध्यस्थता अधिनियम, 1940 की धारा 14 (1) (2), 15, 16, 17 और 38 निम्नानुसार हैं: –

"धारा 14 (1) जब मध्यस्थ या अंपायर ने अपना निर्णय दे दिया है, तो वे उस पर हस्ताक्षर करेंगे और इसे बनाने और हस्ताक्षर करने वाले पक्षों को और मध्यस्थता और निर्णय के संबंध में देय शुल्क और प्रभारों की राशि के बारे में लिखित में नोटिस देंगे।

2. मध्यस्थ या अंपायर, मध्यस्थता समझौते के किसी भी पक्ष के अनुरोध पर या ऐसे पक्ष के तहत दावा करने वाले किसी व्यक्ति के अनुरोध पर या यदि न्यायालय द्वारा निर्देशित और भुगतान पर, मध्यस्थता और अधिनिर्णय के संबंध में देय शुल्क और शुल्क और पुरस्कार दाखिल करने की लागत और प्रभार का कारण या इसकी हस्ताक्षरित प्रति का कारण होगा, साथ में कोई भी बयान और दस्तावेज जो उनके सामने लिया गया हो और साबित किया गया हो, अदालत में दायर किया जाए; और न्यायालय इसके बाद निर्णय दाखिल करने के पक्षकारों को नोटिस देगा।

3. * * * * * *

धारा 15. न्यायालय आदेश द्वारा किसी अधिनिर्णय को संशोधित या सही कर सकता है-

i. जहां ऐसा प्रतीत होता है कि निर्णय का एक हिस्सा मध्यस्थता के लिए संदर्भित नहीं किए गए मामले पर है और ऐसे हिस्से को दूसरे भाग से अलग किया जा

---

(5) एआईआर, 1944 लाहौर 398।

सकता है और संदर्भित मामले पर निर्णय को प्रभावित नहीं करता है; नहीं तो

ii. जहां पुरस्कार फॉर्म में अपूर्ण है, या इसमें कोई स्पष्ट त्रुटि है जिसे इस तरह के निर्णय को प्रभावित किए बिना संशोधित किया जा सकता है; नहीं तो

iii. जहां पुरस्कार में एक लिपिकीय गलती या आकस्मिक पर्ची या चूक से उत्पन्न त्रुटि शामिल है।

धारा 16. (1) न्यायालय समय-समय पर पंचाट के लिए भेजे गए किसी मामले को मध्यस्थों या अंपायर को ऐसी शर्तों पर पुनर्विचार के लिए भेज सकता है जो वह उचित समझे-

i. जहां पुरस्कार ने मध्यस्थता के लिए संदर्भित किसी भी मामले को अनिर्धारित छोड़ दिया है, या जहां यह किसी भी मामले को मध्यस्थता के लिए संदर्भित नहीं करता है और ऐसे मामले को संदर्भित मामलों के निर्धारण को प्रभावित किए बिना अलग नहीं किया जा सकता है; नहीं तो

ii. जहां पुरस्कार इतना अनिश्चित है कि निष्पादन में असमर्थ है; नहीं तो

iii. जहां पुरस्कार की वैधता पर आपत्ति स्पष्ट है।

'

2. जहां उप-धारा (1) के तहत एक पुरस्कार प्रेषित किया जाता है, न्यायालय वह समय निर्धारित करेगा जिसके भीतर मध्यस्थ या अंपायर अदालत को अपना निर्णय प्रस्तुत करेगा:

बशर्ते कि इस तरह से निर्धारित किसी भी समय को न्यायालय के बाद के आदेश द्वारा बढ़ाया जा सकता है।

(2) उपधारा (1) के तहत दिया गया कोई भी फैसला तब अमान्य हो जाएगा जब मध्यस्थ या अंपायर इस पर पुनर्विचार करने और तय समय के भीतर अपना फैसला देने में विफल रहता है।

---

(5) एआईआर, 1944 लाहौर 398।

***धारा* 17. जहां न्यायालय को निर्णय या मध्यस्थता के लिए भेजे गए किसी भी मामले को पुनर्विचार के लिए या रद्द करने का कोई कारण नहीं दिखता है, तो न्यायालय, निर्णय को रद्द करने के लिए आवेदन करने का समय समाप्त हो जाने के बाद, या ऐसा आवेदन करने के बाद, इसे अस्वीकार करने के बाद, निर्णय के अनुसार निर्णय सुनाने के लिए आगे बढ़ेगा, और इस तरह सुनाए गए फैसले पर एक डिक्री का पालन किया जाएगा और कोई अपील नहीं की जाएगी**

(5) एआईआर, 1944 लाहौर 398।

"4

इस तरह के आदेश से, सिवाय इस आधार के कि यह निर्णय से अधिक है, या अन्यथा निर्णय के अनुसार नहीं है।

धारा 38। (1) यदि किसी मामले में कोई मध्यस्थ या अंपायर उसके द्वारा मांगी गई फीस के भुगतान के अलावा अपना पुरस्कार देने से इनकार करता है, तो न्यायालय, इस संबंध में एक आवेदन पर, आदेश दे सकता है कि मध्यस्थ या अंपायर मांगी गई फीस के आवेदक द्वारा अदालत में भुगतान करने पर आवेदक को पुरस्कार देगा, और ऐसी जांच के बाद, यदि कोई हो, जैसा कि वह उचित समझे, आगे आदेश देगा कि न्यायालय में इस प्रकार भुगतान किए गए धन में से मध्यस्थ या अंपायर को फीस के रूप में ऐसी राशि का भुगतान किया जाएगा जिसे न्यायालय उचित समझे और शेष धन, यदि कोई हो, आवेदक को वापस कर दिया जाएगा।

(2) उप-धारा (1) के तहत एक आवेदन किसी भी पक्ष द्वारा संदर्भ के लिए किया जा सकता है जब तक कि मांगी गई फीस उसके और मध्यस्थ या अंपायर के बीच लिखित समझौते द्वारा तय नहीं की गई हो, और मध्यस्थ या अंपायर ऐसे किसी भी आवेदन पर उपस्थित होने और सुनवाई करने के हकदार होंगे।

(3) अदालत मध्यस्थता की लागत ो ं का सम्मान करते हुए ऐसे आदेश दे सकती है, जहां ऐसी लागतों के संबंध में कोई सवाल उठता है और फैसले में उनसे संबंधित कोई पर्याप्त प्रावधान नहीं है।

परिसीमा अधिनियम, 1963 का अनुच्छेद 119 यह निम्नानुसार है :-

किस अवधि के आवेदन से समय की अवधि का विवरण। सीमा चलने लगती है।

"119. मध्यस्थता अधिनियम, 1940 के तहत-

(1)तीस दिनों में फाइलिंग के लिए, एक पुरस्कार की अदालत की सेवा की तारीख। माक की सूचना पुरस्कार का वितरण।

---

(5) एआईआर, 1944 लाहौर 398।

पुरस्कार दाखिल करने की सूचना।

तीस दिनों की सेवा की तारीख, (बी) एक अलग रखने के लिए

पुरस्कार पर पुनर्विचार के लिए पुरस्कार प्राप्त करना या प्राप्त करना।

(5) एआईआर, 1944 लाहौर 398।

9. **याचिकाकर्ताओं के वकील श्री श्री अवस्थी ने क्या कहा है? परिसीमा अधिनियम, 1963 के अनुच्छेद 119 के प्रावधान वर्तमान मामले के तथ्यों से आकर्षित नहीं होते हैं ताकि वर्तमान आवेदन को रोका जा सके, क्योंकि यह धारा 17 के तहत एक है, मध्यस्थता अधिनियम का उद्देश्य केवल विचाराधीन निर्णय को लागू करना था, जबकि परिसीमा अधिनियम के उक्त प्रावधान मध्यस्थता की धारा 14 के संदर्भ में अदालत में निर्णय दाखिल करने के लिए आवेदनों से निपटते हैं। केवल कार्य करें।**

10.अपनी अधीनता के समर्थन में, उन्होंने जय किशन बनाम राम लाई गुप्ता ए.आई.आर. (31) 1944 लाहौर 398, एल. गैंग और राम बनाम एल. राधा किशन ए.आई.आर. 1955 पंजाब 145, राधा किशन बनाम माधो कृष्णा ए.आई.आर. 1952 इलाहाबाद 856, हाजी रहमतुल्ला वि. चौधरी विद्या भूषण ए.आई.आर. 1963 इलाहाबाद 602 का सहारा लिया है।

11.जय किशन के मामले (सुप्रा) में, अब्दुर रहमान, जे. ने कहा कि मध्यस्थता अधिनियम की धारा 14 संपूर्ण नहीं है और अधिनियम में स्पष्ट प्रावधान के अभाव में निर्णय के प्रवर्तन के लिए एक पक्ष द्वारा आवेदन किया जा सकता है, और उस मामले में आवेदन को धारा 17 के तहत एक माना जा सकता है। माना गया कि इस तरह का एक आवेदन परिसीमा अधिनियम के अनुच्छेद 178 (जो 1963 के परिसीमा अधिनियम के अनुच्छेद 119 के बराबर है) के प्रावधानों द्वारा कवर नहीं किया गया था।

12. राधा किशन के मामले (सुप्रा) *में इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने* जय किशन के मामले *(सुप्रा) के अनुपात का पालन किया*, बिंद बंसी प्रसाद, जे, जिन्होंने अदालत के लिए निर्णय सुनाया, ने निम्नलिखित टिप्पणियां कीं: –

"यह एक अनुच्छेद है जो अधिनियम की धारा 14 के तहत किए गए आवेदनों पर लागू

---

(5) एआईआर, 1944 लाहौर 398।

होता है, न कि धारा 17 के तहत किए गए आवेदनों पर। इन दो धाराओं के बीच अंतर यह है कि धारा 14 के तहत मध्यस्थ को पुरस्कार दायर करने के लिए बुलाया जाता है, जबकि धारा 17 के तहत प्रार्थना यह है कि पुरस्कार को कौर का नियम बनाया जा सकता है; और तदनुसार एक निर्णय और डिक्री सुनाई जा सकती है। वर्तमान मामले में यह दिखाने के लिए सबूत हैं कि पुरस्कार की एक प्रति मध्यस्थ द्वारा माधो किशन को दी गई थी। वास्तव में यह था

माधो किशन ने अधिनियम की धारा 17 और धारा 28 के तहत अपने आवेदन के साथ दायर किया है। यह मामला *जय किशन बनाम भारत में दर्ज किया* गया है। *रामलाल गुप्ता* (5) वर्तमान मामले में सभी चार पर हैं। अनुच्छेद 178 वर्तमान मामले पर लागू नहीं होता है।

हाजी रहमतुल्ला के मामले (सुप्रा) में इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने *राधा किशन* के मामले में अपने पहले के दृष्टिकोण का समर्थन किया और अब्दुर रहमान, जे के दृष्टिकोण का लगभग पालन करते हुए कहा कि धारा 17 के तहत एक आवेदन के लिए, परिसीमा अधिनियम के अनुच्छेद 178 के मध्यस्थता अधिनियम के प्रावधान आकर्षित नहीं होते हैं, यह कहते हुए कि भले ही उस आवेदन को धारा 14 (2) के तहत एक आवेदन के रूप में वर्णित किया गया हो, यह केवल अधिशेष होगा यदि वास्तव में यह नहीं है। उस धारा के तहत आवेदन।

13.गंगा *राम के मामले* में पीआर (सुप्रा), 2: तथ्य; 21 जनवरी, 1943 के उस निर्णय पर मध्यस्थता में दोनों पक्षों द्वारा हस्ताक्षर किए गए थे और इसे पंजीकृत किया गया था। इसके बाद 23 जून, 1944 तक किसी भी पक्ष ने इस फैसले पर कोई कार्रवाई नहीं की, जब राधा किशन ने 1944 के सिविल सूट नंबर 313 की स्थापना की, जिसमें घोषणा की गई कि संबंधित फैसले से वह 3,000 रुपये की सीमा तक प्रतिवादी के आरोप के अधीन संपत्ति का मालिक बन गया था। उक्त वाद से उत्पन्न दूसरी अपील उच्च न्यायालय में लंबित थी जब राधा किशन ने मध्यस्थता अधिनियम, 1940 की धारा 17 के तहत एक

(5) एआईआर, 1944 लाहौर 398।

आवेदन किया था, जिसमें निर्णय के अनुसार डिक्री की मांग की गई थी। उस आवेदन का मुख्य रूप से दो आधारों पर विरोध किया गया था। (1) कि अधिनियम की धारा 17 के तहत कोई भी आवेदन सक्षम नहीं था, और (2) कि आवेदन को समय द्वारा रोक दिया गया था। मामले को अंततः हरनाम सिंह और कपूर, जेजे की खंडपीठ के समक्ष रखा गया था। दोनों विद्वान न्यायाधीशों, जिन्होंने अलग-अलग राय लिखी, ने एक तथ्य के रूप में पाया कि अधिनियम की धारा 14 (1) द्वारा परिकल्पित नोटिस पार्टियों को नहीं दिया गया था और उनके निर्णय पर हस्ताक्षर करना धारा 14 (1) के तहत नोटिस के बराबर नहीं होगा। दोनों विद्वान न्यायाधीशों ने तब कहा कि आवेदन धारा 17 के तहत है, न कि अनुच्छेद 178, परिसीमा अधिनियम के प्रावधानों की धारा 14 के तहत, जो केवल अधिनियम की धारा 14 के तहत आवेदन को कवर करता है, उस आवेदन से आकर्षित नहीं था जिससे कार्यवाही उत्पन्न हुई थी। फैसले का हवाला देने के अलावा विद्वान न्यायाधीश

(5) एआईआर, 1944 लाहौर 398।

जय किशन के *मामले में अब्दुर रहमान*, जे ने जॉन बी पेस बनाम जॉन *सोमर* (ए.आई.आर. 1943 सिंध 33) *मामले* में लोबो, जे की निम्नलिखित टिप्पणियों पर भी ध्यान दिया–

"अब यह इस प्रकार है कि एक व्यक्ति जिसने धारा 38 के तहत अदालत की सहायता से एक पुरस्कार का कब्जा प्राप्त किया है, उसे इसे अदालत में दायर करने का अधिकार होना चाहिए। अन्यथा, उन्होंने बिना किसी व्यावहारिक उद्देश्य के अदालत की सहायता मांगी होगी और अदालत ने एक आदेश दिया होगा जो आवेदक को कोई भौतिक राहत नहीं देता है।

14.इसके विपरीत प्रतिवादी के वकील श्री आनंद स्वरूप ने आग्रह किया कि मध्यस्थता अधिनियम की धारा 15, 16 और 17 में वर्णित कार्रवाई के लिए शर्त यह है कि पहले अदालत में कानूनी रूप से निर्णय दायर किया जाए और यदि धारा 14 के संदर्भ में अदालत में निर्णय दायर नहीं किया गया है, तब अन्य कदम कानूनी रूप से पालन नहीं करेंगे। विद्वान वकील ने तर्क दिया कि अन्यथा कहना अधिनियम की धारा 14 के प्रावधानों को दरकिनार करने और उन्हें निरर्थक बनाने के समान होगा। उन्होंने *सेठ रामरिछपाल सिरया* बनाम *अजमेर ट्रेडर्स*, (1963 *राजस्थान* 87)(7)

राजस्थान उच्च न्यायालय की खंडपीठ की निम्नलिखित टिप्पणियों से अपनी दलील प्राप्त करने की मांग की–

"ऊपर वर्णित स्थिति का आवश्यक निहितार्थ यह है कि अधिनियम की धारा 14 के तहत पुरस्कार की उचित फाइलिंग के बिना एक निर्णय और डिक्री की अनुमति नहीं है। वास्तव में, धारा 14 के तहत दायर किए गए पुरस्कार के आधार पर निर्णय और डिक्री के लिए केवल प्रार्थना वाले आवेदन का विचार विदेशी है और धारा 17 की भाषा के प्रतिकूल है क्योंकि इस तरह के आवेदन में निर्णय दायर करने और पार्टियों को नोटिस देने पर विचार नहीं किया जाता है। ऐसे मामले में, परिसीमा अधिनियम के अनुच्छेद 158 के तहत किसी आवेदन के लिए सीमा की अवधि का कोई आरंभ नहीं हो सकता है ताकि निर्णय को रद्द किया जा सके या विप्रेषण किया जा सके। यह इस प्रकार है कि सीमा की अवधि, इसलिए, उचित देने के परिणामस्वरूप कभी समाप्त नहीं होगी

धारा 17 की भाषा के अनुसार, इस तरह के आवेदन पर एक निर्णय और डिक्री कभी भी पारित नहीं की जा सकती है।

संयोजन के रूप में विभिन्न प्रावधानों पर विचार करने पर हमें इस निष्कर्ष पर पहुंचने में कोई संकोच नहीं है कि निर्णय के संदर्भ में निर्णय और डिक्री के लिए एक आवेदन धारा 17 द्वारा विचार नहीं किया जाता है और यह अविचारणीय है। हम महसूस करते हैं
इस निष्कर्ष पर पहुंचने के इच्छुक हैं कि फैसले को लागू करने के लिए उचित प्रक्रिया अदालत में दायर किए गए फैसले के लिए उचित कार्यवाही शुरू करना है और फिर आगे के कदम उठाना है और यह कि इसे दायर किए बिना फैसले के प्रवर्तन के लिए केवल आवेदन सुनवाई योग्य नहीं है।

---

(8) ए.आई.आर. 1953 एस.सी. 313.

15.इस मामले पर सावधानीपूर्वक विचार करने के बाद, मेरा विचार है कि मध्यस्थता अधिनियम की धारा 14 और धारा 17 के तहत याचिकाकर्ता का आवेदन अक्षम और सीमा द्वारा निषिद्ध दोनों था।

16.याचिकाकर्ता के वकील अवस्थी ने तर्क दिया कि स्थिति, जहां पार्टियों के पास मूल निर्णय या उसकी प्रति थी, को उस स्थिति से अलग किया जाना चाहिए जहां मध्यस्थता के पक्षकारों को धारा 14 की उप-धारा (1) के संदर्भ में एक नोटिस दिया गया था, लेकिन मध्यस्थ द्वारा मूल निर्णय या उसकी एक प्रति प्रदान नहीं की गई थी, जबकि बाद की आकस्मिकता में मध्यस्थ अपने दम पर अदालत में पुरस्कार दायर करने में विफल रहता है, मध्यस्थता के पक्षकारों को निर्णय दायर करने के लिए अदालत की सहायता लेनी होगी और इस प्रकार परिसीमा अधिनियम के अनुच्छेद 119 के प्रावधानों को आकर्षित करना होगा; पूर्व आकस्मिकता में; पार्टियों को ऐसा कुछ करने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि वे केवल अदालत में आवेदन करके अगले चरण में आगे बढ़ सकते हैं ताकि निर्णय को अदालत का नियम बनाया जा सके।

17.मुझे डर है कि कानून द्वारा इस शॉर्ट सर्किट की अनुमति नहीं है।

18.कुंभ मावजी बनाम *भारत के डोमिनियन (अब भारत संघ)* में, (8); सर्वोच्च न्यायालय के उनके लॉर्डशिप ने यह अभिनिर्धारित किया

---

(8) ए.आई.आर. 1953 एस.सी. 313.

धारा 14 (2) में स्पष्ट रूप से निहित है कि भले ही पुरस्कार या उसकी हस्ताक्षरित प्रति वास्तव में मध्यस्थ द्वारा पार्टियों को दी गई थी, वे ऐसा करने के लिए अंपायर (या मध्यस्थ, जैसा भी मामला हो) के पूर्व अधिकार के बिना इसे अदालत में दायर नहीं कर सकते थे। इसके अलावा, जहां अंपायर द्वारा पुरस्कार पार्टी को सौंपे गए थे, यह नहीं माना जा सकता था कि केवल पुरस्कार सौंपने से अंपायर को अपनी ओर से अदालत में इसे दायर करने का अधिकार आवश्यक रूप से निहित है। उस अधिकार को विशेष रूप से आरोप लगाया जाना चाहिए और साबित किया जाना चाहिए। इस तरह के अधिकार की अनुपस्थिति में, पार्टी द्वारा पुरस्कार दाखिल करना अंपायर द्वारा दायर नहीं किया जा सकता है।

19.कुम्भा मावजी के मामले *का अनुपात*, जैसा कि मैं समझता हूं, स्पष्ट शब्दों में इस बात से इंकार करता है कि पक्षकार स्वयं ही आरक्षण के लिए पुरस्कार दाखिल कर रहे हैं। इसलिए, यह निर्णय कानूनी रूप से केवल मध्यस्थ द्वारा स्वत: *संज्ञान* लेते हुए या मध्यस्थता के किसी भी पक्ष के माध्यम से अपने पूर्व अधिकार के साथ या न्यायालय के समन के जवाब में दायर किया जा सकता है, जब आकस्मिकता में मध्यस्थता के किसी भी पक्ष द्वारा ऐसा करने के लिए कहा जाता है, जहां वह अदालत में निर्णय दायर करने के लिए अनिच्छुक होता है। यदि ऐसा है, अर्थात, यदि मध्यस्थता में एक पक्ष को न्यायालय में निर्णय दायर करने से भी रोक दिया जाता है, हालांकि मध्यस्थ या अंपायर के अधिकार के बिना उसके पास मूल पुरस्कार था, तो ऐसा पक्ष अपने कब्जे में पुरस्कार कैसे प्राप्त कर सकता है, यह अदालत का एक नियम है और उसके संदर्भ में निर्णय और डिक्री सुरक्षित कर सकता है।

20.मध्यस्थता अधिनियम की धारा 44 के तहत उच्च न्यायालय द्वारा बनाए गए नियमों के नियम 12, जो निम्नलिखित शर्तों में हैं, इस विचार को बल देता है कि पहले अदालत में निर्णय दायर किया जाना है और उसके बाद धारा 17 के तहत न्यायालय के अधिकार को उसके संदर्भ में निर्णय और डिक्री पारित करने के लिए लागू किया जा सकता है: —

"12. *अधिनिर्णय पर निर्णय के लिए आवेदन की सीमा।*पुरस्कार के संदर्भ में निर्णय के लिए आवेदन तब तक नहीं किया जाएगा जब तक कि पुरस्कार दाखिल करने

(9) ए.आई.आर. 1970 एस.सी. 833.

की सूचना की सेवा की तारीख से 30 दिनों की समाप्ति के बाद नहीं।

21.अब लाहौर उच्च न्यायालय की खंडपीठ के फैसले पर विचार करते हुए, यह उल्लेख करना पर्याप्त है कि उस मामले में मध्यस्थता अधिनियम की धारा 14 (1) के तहत परिकल्पित नोटिस मध्यस्थता के पक्षकारों को नहीं दिया गया था। अनुच्छेद 119

---

(9) ए.आई.आर. 1970 एस.सी. 833.

परिसीमा अधिनियम (जो पुराने अधिनियम के अनुच्छेद 178 के बराबर है) इस तरह के नोटिस की तारीख को सीमा के शुरुआती बिंदु के रूप में परिकल्पित करता है। चूंकि कोई नोटिस नहीं दिया गया था, इसलिए सीमा शुरू नहीं हुई और यह तर्क कि आवेदन को सीमा द्वारा प्रतिबंधित किया गया था, स्पष्ट रूप से व्यर्थ था। इसलिए यह टिप्पणी कि आवेदन धारा 17 के तहत था, जिस पर अनुच्छेद 178 के प्रावधान लागू नहीं होते थे, स्पष्ट रूप से *अस्पष्ट थे।*

22.यह स्पष्ट है कि अब्दुर रहमान, जे. और गंगा राम के मामले (सुप्रा) में डिवीजन बेंच का गठन करने वाले न्यायाधीश दोनों, *जॉन बी पेस बनाम जॉन बी पेस* मामले *में लोबो, जे की टिप्पणियों से बहुत प्रभावित थे सोमर,* (6), इस उद्देश्य के संबंध में कि मध्यस्थता अधिनियम की धारा 38 के प्रावधानों को पूरा करने का इरादा है।

23.मुझे डर है कि कुंभा मावजी के मामले (सुप्रा) *में सुप्रीम कोर्ट के उनके लॉर्डशिप की स्पष्ट घोषणा के मद्देनजर मध्यस्थता अधिनियम* की धारा 38 के प्रावधानों की व्याख्या इस दृष्टिकोण को बनाए रखने के लिए नहीं की जा सकती है कि यदि मध्यस्थता के किसी भी पक्ष को या तो मध्यस्थ से या अदालत की धारा 38 के प्रावधानों के आधार पर अदालत के साधन के माध्यम से निर्णय का अधिकार मिल जाता है। मध्यस्थता अधिनियम, यह मध्यस्थ के अधिकार के बिना अदालत में इसे दायर करने का अधिकार प्राप्त करता है और फिर सीधे उसके संदर्भ में अदालत के फैसले और डिक्री की मांग करता है। इसलिए, मैं सम्मान के साथ न तो अब्दुर रहमान, जे. या *राधा किशन के मामले में इलाहाबाद उच्च न्यायालय के विचार से* या गंगा राम के मामले में *हरनाम सिंह और कपूर, जेजे के आदेश से* सहमत होने में असमर्थ हूं ।

24.याचिकाकर्ता के विद्वान वकील श्री अवस्थी ने तब मेरा ध्यान सतीश कुमार और अन्य बनाम *सुरिंदर कुमार और अन्य* (9), मामले में सुप्रीम कोर्ट के एक फैसले की ओर आकर्षित किया । जिसमें उनके लॉर्डशिप ने कहा था कि अदालत के नियम बनाए बिना भी एक निर्णय एक मूल्यवान दस्तावेज है, न कि कागज का टुकड़ा। मुझे समझ में नहीं आता कि उनके लॉर्डशिप की यह टिप्पणी विद्वान वकील के मामले को कैसे आगे बढ़ाती

(9) ए.आई.आर. 1970 एस.सी. 833.

है, यदि कुछ भी हो, तो यह इस दृष्टिकोण को मजबूत करता है कि अदालत के नियम बनाए बिना भी निर्णय अपने आप में एक मूल्यवान दस्तावेज है और मध्यस्थता के पक्षकार कर सकते हैं।

(9) ए.आई.आर. 1970 एस.सी. 833.

इसके संदर्भ में न्यायालय से डिक्री प्राप्त करने के अलावा किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसकी आवश्यकता है, और 3 मध्यस्थता अधिनियम की धारा 38 के प्रावधानों का उद्देश्य ऐसे पक्ष को न्यायालय की मदद से एक अनिच्छुक मध्यस्थ से विषय प्राप्त करने में मदद करना था।

25.जहां तक प्रतिवादी के खिलाफ विचाराधीन आवेदन की विचारणीयता का संबंध है। मेरा विचार है कि वास्तव में जिस दल को सरकार का गठन किया गया था, उसे खुशी-खुशी वर्णित नहीं किया गया था। कार्यकारी अभियंता, प्रोजेक्ट पंजाब हेल्थ डिवीजन नंबर 4, चंडीगढ़ के माध्यम से भारत सरकार का उल्लेख करने के बजाय, इसने (आवेदक) "कार्यकारी अभियंता, प्रोजेक्ट पंजाब हेल्थ डिवीजन नंबर 4, चंडीगढ़" का उल्लेख किया था। यह केवल गलत विवरण का मामला है जिसे न्यायालय किसी भी समय ठीक करने का आदेश दे सकता है। इसलिए, मैं मानता हूं कि आवश्यक पक्ष के शामिल न होने के कारण आवेदन बुरा नहीं है।

26.अब विलंब के क्षमा दान पर आते हुए, मैं देख सकता हूं कि याचिकाकर्ता ने अत्यधिक लापरवाही बरती है और देरी की माफी के लिए कोई मामला नहीं बनाया गया है।

27.फैसले से अलग होने से पहले अवस्थी द्वारा कुछ हद तक आधे-अधूरे मन से की गई एक और दलील पर ध्यान दिया जा सकता है. उन्होंने आग्रह किया है कि आवेदक-अपीलकर्ता (याचिकाकर्ता) के पास पंचाट अधिनियम की धारा 14 (1) के तहत परिकल्पित निर्णय पर हस्ताक्षर करने की कानूनी सूचना नहीं थी और इसलिए, आवेदन को सीमा द्वारा प्रतिबंधित करने का सवाल ही नहीं उठता।

28.यह किसी भी स्तर पर अपीलकर्ता (याचिकाकर्ता) का मामला नहीं था**, यहां तक कि इस न्यायालय में याचिका के आधार पर भी नहीं, यह देखना उचित होगा कि आवेदक-अपीलकर्ता: (याचिकाकर्ता) को पंजीकृत डाक के माध्यम से** निर्णय **की एक प्रति भेजी गई थी और यह कल्पना नहीं की जा सकती है कि यह धारा 14 (1) के संदर्भ में मध्यस्थता के पक्षकारों को नोटिस के माध्यम से नहीं किया गया था। किसी भी मामले में, पंजीकृत**

(9) ए.आई.आर. 1970 एस.सी. 833.

मेसर्स फ्रिक इंडिया लिमिटेड, जीवन विहार, संसद मार्ग,
नई दिल्ली *बनाम* कार्यकारी अभियंता, आदि, (तेवतिया, जे।

डाक के माध्यम से मध्यस्थ से आवेदक द्वारा पुरस्कार की प्रति की प्राप्ति, मेरे विचार में, धारा 14 (1) के संदर्भ में कानून की नजर में एक उचित नोटिस है। इसलिए, मैं विद्वान वकील द्वारा दिए गए आरोपों को पूरी तरह से निराधार मानता हूं।

29. बताए गए कारणों के लिए, एफएओ और सिविल संशोधन दोनों को लागत के साथ खारिज कर दिया जाता है।

बी.एस.जी.

अस्वीकरण : स्थानीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के सीमित उपयोग के लिए है ताकि वह अपनी भाषा में इसे समझ सके और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है । सभी व्यवहारिक और आधिकारिक उद्देश्यो के लिए निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रमाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य के लिए उपयुक्त रहेगा

प्रांशु जैन
प्रशिक्षु न्यायिक अधिकारी,
गुरुग्राम, हरियाणा

---

(9) ए.आई.आर. 1970 एस.सी. 833.